लोक स्वराज्य यात्रा

बजरंगलाल

लोक स्वराज्य यात्रा के प्रथम चरण का विस्तत विवरण पिछले अंक में छपा था। द्वितीय चरण की यात्रा तेरह मार्च से शुरू हुई। पहला कार्यक्रम डिहरो आन सोन बिहार में सम्पन्न हुआ। इस बैठक में बहुत ही अच्छो तथा उत्साह वर्धक उपस्थिति रहीं। प्रथम चरण तथा द्वितीय चरण को मिलाकर यह बैठक सबसे अधिक अच्छो रही। चौदह मार्च को राजगीर तथा पंद्रह को मधुबनी में सफल बैठकें सम्पन्न हुई। किन्तु मधुबनी के बाद दिल्ली तक की बठकों का स्तर तीन या चार का रहा। कोई बैठक बहुत उल्लेखनीय नहीं थी। दिल्ली की बैठकों का स्तर अवश्य ही कुछ अच्छा था। अठाइस तारीख से हम लोगों ने उत्तर प्रदश और दिल्ली से निकलकर हरियाणा में प्रवेश किया। हरियाणा पंजाब क्षेत्र में तीन दिन रहकर हमने अनुभव किया कि वहॉ कोई पूर्व तैयारी का अभाव है। अधिकांश स्थानों पर आयोजकों को यह जानकारी नहीं थी कि उन्हें क्या करना है और क्यों करना है। अतः हम लोगो ने एक अप्रैल को यात्रा को रोक कर दिल्ली लौटना उचित समझा और दिल्ली में आर्येन्दु जी के निवास पर समीक्षा की और आगे की यात्रा को स्थगित कर दिया।

द्वितीय चरण की यात्रा में प्रारंभिक दस दिनों में या तो अधिवक्ताओं के बीच बैठक हुई या आर्य समाज मंदिरों म। किन्तु दिल्ली के बाद की बैठकों का आयोजन स्वतंत्र रूप से करने का प्रयास हुआ जो असफल हुआ। किसी भी कार्यक्रम को सफलता के चार आधार होते हैं। 1. वैचारिक 2. संगठनात्मक 3. व्यक्तिगत संबंध 4. आर्थिक लेन देन। हमारा लोक स्वराज्य की दृष्टि से कोई न तो वैचारिक सबंध था न ही संगठनात्मक। आर्थिक लेन देन बिल्कुल था ही नहीं। व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर तीन स्थानों पर बैठकें हुई।' शेष पर कोई व्यक्तिगत संबंध भी नहीं था। अर्पित जी पारिवारिक समस्याओं के कारण पूर्व भ्रमण नहीं कर सके थे। अतः हमने समय और शक्ति का इस तरह उपयोग उचित न समझ कर यात्रा को रोक दिया और तय किया कि आगे की यात्रा पूर्व अच्छी तयारी के बाद ही करना उचित होगा।

दो माह की यात्रा में कई अनुभव हुए –

पूरे भारत में विचार मंथन की प्रकिया का बिल्कुल अभाव है। चारों ओर सक्रियता ही सक्रियता दिख रही है। पूरे भारत में काम करने वालों का भी कोई अभाव नहीं है और न ही धन खर्च करने वालों का। अभाव यदि है तो सिर्फ इतना ही कि क्या किया जाय यह विचार नहीं हो रहा है।

सम्पूर्ण भारत में प्रतिबद्ध विचार पसार की आंधी उठी हुई है। विचार स्वातंत्रय का पूरी तरह अभाव है। प्रत्येक विचारक या तो वामपंथी विचारों का संवाहक है या दक्षिणपंथी। अपने अपने प्रतिबद्ध विचारकों को समाज में स्थापित करने की होड़ लगी हुई है। वामपंथियों ने प्रतिबद्ध विचार स्थापित करने की पहल की और अपने प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं को विचारक प्रमाणित करके धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, गरीबों के उद्धारकर्ता को विचारक प्रमाणित करके धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, गरीबों के उद्धारकर्ता, पर्यावरण प्रेमी महिला उद्धारक आदि शब्दों से उन्हें अलंकृत कर दिया तथा साहित्य, राजनीति, न्यायपालिका आदि में विचारक के रूप में स्थापित कर दिया। दक्षिणपंथियों और पूॅजीवादियों को भी जब ध्यान आया तो उन्होंने भी अपने कायकर्ताओं को राष्ट्रवादी विचारक शब्द से अलंकृत किया और राष्ट्रवादी साहित्य, राजनीति, वास्तविक राष्ट्रवादी निरपेक्षाता आदि के नाम पर उन्हें राजनीति, साहित्य या न्यायपालिका में स्थापित करना शुरू कर दिया। पूरे भारत में विचारों के नाम पर वही घिसे पिटे वामपंथी या दक्षिण पंथी विचार अपनी अपनी स्थापना के लिये संघर्षत् हैं। स्वतंत्र चिन्तन या स्वतत्र चिन्तकों का बिल्कुल अभाव है।

पूरे भारत में अनुभव किया गया कि विचारकों में सत्य को स्वीकार करने की बिल्कुल हिम्मत नहीं है। आम तौर पर भारतीय विचारक निर्लज्जता की सीमा तक उतरकर अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। राजनैतिक धार्मिक या सामाजिक क्षेत्र में स्थापित व्यक्तित्वों की विश्वसनीयता समाज में न्यूनतम हो गई है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जिसके कथन को आम लोग यह कह दें कि वे झूठ नहीं बोल सकते।

मैंने जीवन भर यह प्रयास किया कि उपरोक्त तीनों धारणाओं को असत्य प्रमाणित कर दूॅ। मैंने अपनी पूरी शक्ति विचार मंथन में लगाई और अनेक निष्कर्ष निकाले। मैंने वामपंथ और दक्षिण पंथ की प्रतिबद्धता से स्वयं को बिल्कुल दूर रखा। मैंने अपने क्षेत्र में ऐसा विश्वास अर्जित किया कि लोग किसी जटिल से जटिल मुद्दे पर भी मेरे कथन को ही घटनाओं का सत्य स्वीकारने लगे। मैं सन्यासी नहीं हूॅ न ही मेरे वस्त्र सन्यासी के समान है। मै पूरे गृहस्थ के वस्त्र पहनता हूॅ। इसके बाद भी इस क्षेत्र के लोग मुझे आर्य सन्यासी क समान इसलिये मानते हैं कि मैं अप्रतिबद्ध विचारक के रूप में आगे आ रहा हूॅ।

मैं कई बार महसूस करता हूॅ कि मुझे वर्तमान आवश्यकता के आधार पर सन्यास लेकर अपनी सारी शक्ति इस एकमात्र कार्य में लगा देनी चाहिये। घोषित सन्यास सामान्य नागरिकों में स्वीकार बनाता है तथा समर्थकों की भीड़ सुविधा पूर्वक बनती है। इस तरह विचार प्रसार में घोषित सन्यास की भूमिका बहुत सहायक है। किन्तु घोषित सन्यास विचार मंथन में बहुत बाधक होता हैं क्योंकि सन्यासी के प्रति आम लोगा के मन में श्रद्धा भाव होता हैं। विचार मंथन में किसी सन्यासी के होने से मंथन एकपक्षीय हो सकता है। इसलिये विचार प्रधान लोग ऐसे कार्यक्रमों से दूर हटते हैं। गंभीर विचार की आवश्यकता है कि विचार मंथन को पूर्ण मानकर विचार प्रसार की दिशा में आगे बढने की आवश्यकता हो तो मुझे घोषित सन्यास की तरफ बढ़ना चाहिये और यदि विचार प्रसार के साथ साथ विचार मंथन भी जारी रखना हो तो मुझे अघोषित सन्यास की वर्तमान परंपरा तक ही सीमित रहना चाहिये।

इन सब बातों पर गंभीर विचार करके काम आगे बढ़ाना है अगले कुछ महिन निर्णय के लिये महत्वपूर्ण हैं। यात्रा कुछ बदले स्वरूप में जून में शुरू होकर छब्बीस जून को अजमेर में समाप्त होगी। राजस्थान के प्रमुख साथियों को छब्बीस जून को अजमेर आना चाहिये। अजमेर के बाद होने वाले सम्मेलनों के लिये चार स्थान सोचे जा रहे ह। दिल्ली, बंगलौर, कलकत्ता और अम्बिकापुर। अम्बिकापुर का सम्मेलन तीन चार और पांच अक्टूबर को आयोजित है। छः अक्टूबर को रामानुजगंज शहर में एक दिन का सम्मेलन रखा जा रहा है। जो लोग रामानुजगंज देखना चाहें वे देख सकते हैं। अम्बिकापुर सम्मेलन में उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड और मध्यप्रदेश के लोगों को अवश्य आना चाहिये। इन सबका आमंत्रण लाल स्याही अंकित जायेगा। अन्य क्षेत्रों के लोग सुविधा अनुसार आ सकते है। उन्हें सामान्य आमंत्रण जायेगा। कार्यक्रम में कितने भी लोग आ सकते हैं। भोजन, निवास, निःशुल्क है। आवागमन व्यय आप अपना स्वयं का या चन्दे से कर सकते हैं या सक्षम लोग अपने क्षेत्र स भेजने की व्यवस्था कर सकते हैं।

भारतीय राजनीति दैत्याकार हो गई हैं। सम्पूर्ण समाज व्यवस्था को छिन्न भिन्न करके राजनीति ने उसे पंगु बना दिया हैं। कोई व्यक्ति या संगठन उक्त दैत्याकार राजनीति पर अंकुश लगाने का न तो मार्ग खोज पा रहा है न प्रयत्न कर पा रहा है। हम लोगों ने बहुत कठिन तपस्या करके मार्ग निकाला है। आपके सहयोग से यह पवित्र कार्य अवश्य पूरा होगा। आशा है कि अपनी अपनी सक्रियता बनाये रखेंगे।

श्री रणछोड़ दास गट्टानी, पूर्व न्यायाधीश, जोधपुर, राजस्थान ।

प्रश्न – ज्ञान तत्व अंक तिहत्तर पृष्ठ के क और ख अंश पर आपने दो बातें लिखी हैं । **1.** भारत के प्रदेश और केन्द्र सरकारों के कुल बजट का सिर्फ एक प्रतिशत पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है।

2. पुलिस और न्यायालय के कुल बजट का दस प्रतिशत वास्तविक अपराध नियंत्रण पर तथा नब्बे पैसा कानूनी अपराध नियंत्रण पर खर्च होता है।

ये आकलन पूरी तरह अविश्वसनीय लगता है। आप अपनी बात को आर अधिक स्पष्ट करने की कृपा करें।

उत्तर – मैंने अपने सम्पूर्ण अनुसंधान में करीब एक सौ ऐसे रहस्य खोज कर निकाले हैं जो समाज के लिये अविश्वसनीय होते हुए भी सत्य हैं। ये रहस्य अच्छे अच्छे सत्ता से जुड़े लोग भी नहीं जानते, सामान्य जन के जानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। भारत में कौन जानता है कि किसी राह चलते व्यक्ति को दो चार जूता पीटकर भाग जाने पर पुलिस को यह अधिकार नहीं है कि वह मारने वाले को गिरफ्तार कर सके या केस बना सके क्योंकि धारा तीन सौ तेइस को पुलिस हस्तक्षेप से दूर रखा गया है जबकि सड़क किनारे बैठकर जुआ खेलने वाले को पुलिस केस बनाकर गिरफ्तार कर सकती है। इसी तरह भारत में सरसो तेल पर पांच रूपये प्रति लोटर टैक्स लगता हैं और तेल पर सब्सीडी है या साइकिल पर प्रति साइकिल ढ़ाई सौ रूपया टैक्स लगता है, ऐसी बातें सच होते हुए भी कौन जानता हैं। ऐसी ही एक सौ रहस्यात्मक बातों में से उपराक्त दो हैं जो पूरी तरह सच हैं। भारत में प्रदेश ओर कन्द्र सरकारों का कुल मिलाकर वाषिक बजट अस्सी खरब का हो सकता है। केन्द्र सरकार अपने बजट का कोई भाग पुलिस और कोर्ट पर खर्च नहीं करती। प्रदेश सरकारों का अपने कुल बजट का सिर्फ 2 प्रतिशत करीब ही पुलिस और कोर्ट पर खर्च होता है। इस तरह यह 2 प्रतिशत सम्पूण बजट का करीब एक प्रतिशत होता है।

पुलिस और न्यायालय को दो प्रकार के कार्य दिये गये हैं –

(क)अपराध नियंत्रण जिसमें कोई इकाई किसी अन्य इकाई की इकाई गत स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि **1.** ऐसी बाधा सर्वदा दूसरों पर अत्याचार के रूप म हुआ करती हैं, अपनो पर नहीं **2.** ऐसी बाधा सदा स्वार्थ वश खड़ी की जाती हैं, अच्छी नीयत से नही **3.** ऐसी बाधा सदा दूसरे पक्ष की सहमति के बिना की जाती हैं, सहमति से नहीं। इन अपराधों में मुख्य पांच कार्य आते हैं **1.** चोरी, डकैती, लूट **2.** बलात्कार **3.** मिलावट, कमतौल **4.** जालसाजी और धोखाधड़ी **5.** आतंक, हिंसा, गुण्डागर्दी, दादागिरी ।

(ख)गैर कानून कार्य नियंत्रण – इनमें भ्रम, अशिक्षा किन्तु निस्वार्थ भाव से किये गये ऐसे अनैतिक कार्य भ्शामिल हैं जो प्रत्यक्षरूप से कर्ता को स्वयं तथा आंशिक रूप से समाज पर प्रभाव डालते हैं। ऐसे काया की सूची बहुत लंबी है। बाल विवाह, दहेज, स्वेच्छा से सती होना, जुआ, शराब, गांजा, छुआछूत, हरिजन, आदिवासी, महिला के विशेषाधिकार हनन के कार्य, वैश्यावृत्ति, बाल श्रम आदि कुछ कार्य इनमें शामिल हैं। इन कार्यो की सूची इतनी लंबी है कि पुलिस ओर न्यायालय की तीन चौथाई शक्ति इन्हीं कार्यो पर खर्च हो जाती है। इनके अतिरिक्त जब पुलिस पर ब्लैक, तस्करी अवैध परिवहन आदि का दायित्व सौपा जाता है तब तो पुलिस और न्यायालय इन्हीं कार्यो के बोझ से दब जाते हैं। उनक पास वास्तविक अपराध रोकने की शक्ति बचती ही नहीं।

इस तरह पुलिस पहले प्रकार के काया मे दस प्रतिशत और दूसरे प्रकार के कार्यो में नब्बे प्रतिशत सक्रिय हो जाती हैं। सच्चाई यह है कि अपराधिक गतिविधियों में लगे लोग लगातार पुलिस की इसलिये आलोचना करते हैं कि उसने दूसरे प्रकार के कार्यो को सफलता से नहीं रोका। सामाजिक कार्यकर्ता, नेता और पत्रकार स्थिर लगातार दूसरे प्रकार के कायो की रोकथाम में बहुत सक्रिय और सहयोगी की भूमिका दिखाते हैं जबकि पहले प्रकार के अपराधों के विरूद्ध वे गवाही तक देने को तैयार नहीं।

अभी अक्षय तृतीया को पूरे भारत में कई जगह बाल विवाह हुए। देश भर की अनेक सामाजिक संस्थाओं ने तथा अखबारों ने बालविवाह रोकने में पुलिस और प्रशासन के विरूद्ध अनेक तीखी टिप्पणियॉ की। कई कलेक्टरों ने भी सक्रियता दिखाई। बाल विवाहो में पुलिस की ड्युटी लगाई गई। जो पुलिस इस क्षेत्र में डकैती, आतंक, हिंसा और मिलावट से आम नागरिकों को किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं दे पा रही है, जो पुलिस बूथ लुटेरों को नहीं रोक सकी तथा इस क्षेत्र के आम मतदाताओं को अपना वोट स्वतंत्रता पूर्वक देने की व्यवस्था नहीं करा सकी उससे हम बाल विवाह रोकने में लगने की अपील कर रहें हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि राजा राममोहन राय या ब्रम्ह समाज ने सामाजिक कुरीतियों को प्रशासनिक हस्तक्षेप से रूकवाने का प्रयास करके जो गंभीर भूल की शुरूआत की तथा गाधी जी ने भावना वश कानून से शराब या छुआछूत बंद करने की जो बात कभी कह दी उससे समाज की बहुत क्षति हुई है। प्रशासन की बहुत शक्ति इन सामाजिक कार्यो में लग गई और सारा बोझ अन्ततः पुलिस और न्यायालय को ही झेलना पड़ा। इस तरह कुल बजट का जो एक प्रतिशत मात्र पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता था उस एक प्रतिशत का भी नब्ब प्रतिशत गैर कानूनी कार्यो को ही रोकथाम पर खर्च होता रहा। इस तरह कुल बजट का सिर्फ दस पैसा प्रति सैकड़ा ही वास्तविक अपराध नियंत्रण पर खर्च हो रहा है जैसा मैंने पिछले अंक में लिखा है। मैं आश्वस्त हूॅ कि उक्त आंकड़ों में कोई उल्लेखनीय हेरफेर ही संभावना नहीं है। मैं इस संबंध में और विचार का पक्षधर हूॅ।

श्री रामसेवक गुप्त, रामानुजगंज, सरगुजा ।

प्रश्न – पिछले दिनों हरियाणा पंजाब उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने अघोषित हड़ताल की। कुछ दिन पूर्व ही कई न्यायालयों ने सरकारी कर्मचारियों या अधिवक्ताओं की हड़तालों को गैर कानूनी घोषित किया था। न्यायाधीशों की हड़ताल पर हमारे राष्ट्रपति महोदय ने सक्रियता दिखाई। आप न्यायालयों द्वारा अन्य हड़तालों पर प्रतिबंध, स्वयं हड़ताल करने तथा राष्ट्रपति जी को सक्रियता पर अपने विचार लिखिये।

उत्तर – यह एक प्राकृतिक नियम ह कि यदि तीन लोग मिलकर संयुक्त सक्रियता ओर संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर कोई काम करते हैं तो उनमें सामंजस्य एक अनिवार्य शर्त होती है। यदि तीन लोगों में कोई एक सामान्य से अधिक सक्रिय हो जावे तो तीनों की असफलता बिल्कुल निश्चित है। कल्पना करिये कि दो लोगों की तीन पैर की दौड़ की प्रतिस्पर्धा में एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा बहुत तेज दौड़ना शुरू कर दे तो परिणाम असफलता का ही होगा। प्रजातंत्र की भी यह अनिवार्य शर्त होती है कि उसके तीनों अंग न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका में पूर्ण सामंजस्य हो। तीनो की नोयत भी एक हो ओर सक्रियता भी।

भारत में भी लोकतंत्र है। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका का यह कर्तव्य है कि वह सामंजस्य बनाकर चले और उसका अधिकार है कि तीनों म से कोइ एक अधिक शक्तिशाली होने का प्रयास करे तो वह उस पर रोक लगावे। तीनों के बीच सामंजस्य एक अनिवार्य आवश्यकता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू औरों की अपक्षा कुछ अधिक सक्रिय भी थे और कुछ अधिक खींच कर भी चलते थे। सामाजवादियों में खासकर यह दोष होता है कि अपने को कहते हैं समाजवादी आर होते हैं पूरी तरह व्यक्तिवादी। आज तक कोइ सामाजवादी हुआ ही नहीं जो साधारण बातों में भी सामंजस्य कर ले। नेहरू जी भी ऐसे ही समाजवादी थे और उसका परिणाम हुआ कि विधायिका मजबूत होती गई। विधायिका ने लगातार मजबूत होकर कार्यपालिका और न्यायपालिका को इस सीमा तक कमजोर कर दिया कि प्रजातांत्रिक भारत में जनता ने इंदिरा जी को अप्रत्यक्ष धोखा देकर तानाशाही से कार्यपालिका और न्यायपालिका को मुक्त कराया। फिर भी विधायिका अन्य की अपेक्षा मजबूत ही रही। राजीव गांधी ने भी अपने कार्यकाल में कट्टरपंथी हिन्दुओं के लिये अयोध्या मंदिर का ताला खुलवाकर तथा कट्टरपंथी मुसलमानों के लिये शाहबानों प्रकरण में मनमानी करके विधायिका की सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयत्न किया।

विधायिका के शक्तिशाली होने तथा न्यायपालिका और कार्यपालिका के कमजोर होते जाने से राजनीति का चरित्र निरंकुश होता चला गया। तब न्यायपालिका ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से विधायिका पर अंकुश लगाना शुरू किया। न्यायपालिका की यह कार्यप्रणाली पूरी तरह अनाधिकार चेष्टा थी किन्तु निरंकुश विधायिका पर अंकुश लगाने का कोई और प्रजातांत्रिक मार्ग उपलब्ध नहीं था। परिणाम स्वरूप न्यायपालिका का उपरोक्त प्रयास अनाधिकृत होते हुए भी पूरे भारत में प्रशंसनीय माना गया। विधायिका ने एक दो बार टकराने का प्रयास भी किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली क्योंकि न्यायपालिका क समक्ष उसकी विश्वसनीयता नगण्य थी। धीरे–धीरे न्यायपलिका मजबूत होती गई तथा इस मजबूती का ही दुष्परिणाम हुआ कि न्यायपालिका में वे सारे दुर्गुण प्रवेश करने लगे जो विधायिका में थे। वर्तमान समय में तो न्यायपालिका की हालत ऐसी हो गई है कि उसने विधायिका के सभी कामों में हस्तक्षेप शुरू कर दिया है और पालन भी करवा रही है। हालत इस सीमा तक खराब हुई है कि न्यायपालिका ने अपने न्यायाधीशों के वेतन भत्ते बढ़वाने के लिये पूरी तरह अप्रजातांत्रिक दबाव अपने वेतन भत्तों में वृद्धि करा ली जैसे कि विधायिका के लोग निरंतर अपने लिये करते रहे हैं।

इस संबंध में विचार करते समय यह बात ध्यान देने योग्य हे कि आज न्यायपालिका में ईमानदारी और अनुशासन अन्य विभागों की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। यदि सम्पूर्ण समाज में भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता की अनुमानित मात्रा को नब्बे मान ले तो यह मात्रा विधायिका और कार्यपालिका में साढ़े निन्यान्नवे तथा न्यायपालिका में सत्तर के करीब कही जा सकती है। विचारणीय है कि न्यायपालिका में भी जब उसी समाज के लोग आते हैं तो शासकीय कर्मचारी और न्यायिक कर्मचारी में इतना अन्तर क्यों हो जाता है। मैंने बहुत गंभीरता पूर्वक विचार किया तो पाया कि न्यायपालिका का अपने न्यायिक अधीनस्थों पर पूरा अधिकार हैं। वे अपने अधीनस्थों को दण्डित कर सकते हैं, निलंबित कर सकते हैं और यदि चाहे तो बिना कारण बताये बर्खास्त कर सकते हैं। किन्तु जब अन्य कोई विभाग का मामला होता है तो न्यायपालिका उस कर्मचारी की तरफ से विशेष सक्रियता दिखाना शरू कर देती है। न्यायपालिका को छोड़कर अन्य सभी विभागों में विशेष अनुशासनहीनता का कारण न्यायालयों का उन विभागों की कार्यप्रणाली में अधिकाधिक हस्तक्षेप है। यहॉ तक कि शासकीय कर्मचारियों के स्थानान्तरण जैसे साधारण मामलों में भी न्यायालय इतने अधिक मानवीय बन जाते हैं जैसे कि अन्य सारे लोग अमानवीय हों और मानवता की एकमात्र ठेकेदारी उन्हीं की हो। कल्पना कीजिये कि न्यायिक कर्मचारियों के भी आंतरिक मामलों की अन्तिम अपील किसी और विभाग में होने लगे तो क्या परिणाम होगा उनके अनुशासन का। मेरे विचार में न्यायपालिका ने विधायिका की निरंकुशता पर अंकुश लगाने के जो भी प्रयत्न किये वे स्वागत योग्य हैं किन्तु उसे यह नहीं भूलना चाहिये कि निरंकुशता सदा हानिकर होती है चाहे वह न्यायपालिका की ही क्यो न हो।

कुछ माह पूर्व न्यायपालिका ने एक बहुत ही मानवीय आदेश पारित किया कि भारत के किसी प्रदेश में यदि कोई व्यक्ति भूख से मरेगा तो उस प्रदेश का मुख्य सचिव जिम्मेदार होगा। इस आदेश पर कई प्रश्न खड़े होते हैं –

क्या यह आदेश न्यायिक आदेश है? मेरे विचार में तो यह आदेश पूर्णतः कार्यपालिक आदेश है न्यायिक नहीं।

क्या इस आदेश से न्यायपालिका अपनी सर्वोच्चता प्रमाणित नहीं कर रही? मेरे विचार से तो यह निर्णय मुख्य सचिव स्तर के लोगों के कार्य प्रभावित करेगा। अब वे बिना इस बात की परवाह किये कि इसमें कोई धन बर्बाद न हो, धन की होली खेलना शुरू कर देंगे।

भूख से किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर भी क्या मुख्य सचिव स्तर तक की सम्पूर्ण मशीनरी मृत्यु का कारण भूख प्रमाणित होने लगी? मेरे विचार में नही और नीचे से लेकर उपर तक असत्य का बोलबाला होगा।

न्यायपालिका की नजर में भूख से मृत्यु होने पर यदि मुख्य सचिव जिम्मेवार होगा तो मिलावटी दवा, बलात्कार और आतंकवाद से होने वाली हत्या के लिये कौन जिम्मेदार होगा?

क्या यह उचित होगा कि किसी पेशेवर हत्यारे द्वारा बार बार हत्या के बाद भी जमानत पर छूट कर पुनः हत्या के लिये न्यायपालिका के सवाच्च पद को दोषी मान लिया जाय?

मेरे विचार में सब कुछ अतिसंवेदना के आधार पर हो रहा है जिसमें न्यायपालिका विधायिका पर अंकुश लगाने के स्थान पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास कर रही है आर जो भारतीय लोकतंत्र के लिये घातक है।

यदि हम हरियाणा पंजाब के न्यायाधीशों के कार्यो पर विचार करें ता उनका आचरण भारत की प्रचलित अन्य अनुशासन हीन परंपराओं के अनुसार था, न्यायिक अनुशासन के अनुसार नहीं। विभिन्न न्यायालयों ने कुछ माह पूर्व ही यह निर्णय दिया कि हड़ताल कराना अनुचित कार्य है। सारे देश में न्यायालयों की बहुत प्रशंसा हुई। ऐसा निष्कर्ष तो बहत पहले ही होना चाहिये था। कुछ राजनैतिक दलों ने इस सोच का विरोध भी किया किन्तु वे अभी जनमत से दबे हैं। किन्तु यदि हमारे न्यायाधीश ही वैसा करना शुरू कर दे ता गंभीर समस्या उत्पन्न हो जायेगी। यह तर्क पूरी तरह अमान्य है कि न्यायाधीशों ने हड़ताल कराई नहों बल्कि की है। यह संभव नहीं हैं कि सब लोगों के मन में बिना किसी के पहल किये अपने आप ऐसा विचार जगा हो। अवश्य ही किसी व्यक्ति या ग्रुप ने इसकी पहल की होगी। ऐसी पहल निश्चित रूप से उचित नहीं। कार्य इतना गलत था कि राष्ट्रपति महोदय को भी इसमें हस्तक्षेप की पहल करनी पड़ी | निश्चित रूप से राष्ट्रपति जी का न्यायपालिका की उच्चश्रृंखलता पर अंकुश लगाने का यह प्रथम प्रयास स्वागत योग्य है। किन्तु साथ म ऐसे प्रयासों के दुष्परिणाम पर भी विचार करना आवश्यक है। विधायिका की निरंकुशता पर न्यायपालिका द्वारा लीक से हटकर अंकुश लगाने का प्रयास तब तक स्वागत योग्य है जब तक न्यायपालिका में स्थापित व्यक्ति उक्त प्रयासों को अपनी आदत में शामिल न कर लें, जैसा की अभी हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि वर्तमान राष्ट्रपति जी द्वारा किया गया यह उचित प्रयास भविष्य के राष्ट्रपतियों की आदत बन जावे और भारत म न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका को एक दूसरे की अति सक्रियता काल में अंकुश लगाने के लिये प्राप्त अधिकार अपनी अपनी सर्वोच्चता प्रमाणित करने की प्रतिस्पर्धी में लगाकर प्रजातंत्र की गाड़ी को पटरी से उतार दें। भारत अभी विधायिका पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से न्यायपालिका और कार्यपालिका के भी निरंकुश होने की परिपाटी को स्वीकार नहीं कर सकता।

विधायिका तो पूरी तरह संवेदना शून्य हो गइ है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि प्रजातंत्र की गाडो पटरी पर चलेगो या गिर जायेगी। किन्तु न्यायपालिका अभी ऐसी स्थिति तक नहीं पहुॅची है अब भी समय है कि न्यायपालिका विधायिका पर अंकुश लगाने का पूरा प्रयास कर किन्तु विधायिका के आन्तरिक कार्यो में हस्तक्षेप करने से बचें अन्यथा न्यायपालिका में भी उसी समाज के लोग हैं जिसके विधायिका में। यदि एक सी ही हालत रही तो वह दिन दूर नहों जब न्यायपालिका भी उन सभो अवगुणों की खदान बन जायेगी जो विधायिका में हैं और तब शायद जनता को पुनः सतहत्तर सरीखी कोई मोन क्रान्ति करनी आवश्यक हो जावे।

श्री अर्पित अनाम, उपाध्यक्ष, लो.स्व.मंच. हरियाणा ।

प्रश्न— हम कार्यकर्ताओं को काम करने की प्रेरणा देते हैं तो वे प्छत हैं कि इस कार्य से उन्हें क्या लाभ होगा? वे समय भी दें और खर्च भी करें यह संभव नहीं दिखता। कोइ कार्यकर्ता अपना खर्च करके आपकी बैठक में आवे और अपना खर्च करके पंपलेट पर्चा छपवाये इसके लिये किसी की सहमति नहीं है। ऐसी स्थिति में हम किस प्रकार लोक स्वराज्य का काम आगे बढ़ावे।

उत्तर — हम लोगों ने पंद्रह वर्षो तक अनुसंधान किया। अनुसंधान के बाद पांच वष का रामानुजगंज में प्रयोग किया। बीस वर्षो की पूरी मेहनत और खर्च के बाद भारतीय समस्याओं के कारण और समाधान का एक मार्ग निकला। अब इस मार्ग पर चलकर समाधान करने की आवश्यकता है जो किसी व्यक्ति के बस की बात नहीं।

ऐसे कार्यक्रमों से लोग तीन आधार से जुड़ते हैं **1**. विचार **2.** व्यक्तिगत संबंध और **3.** स्वार्थ। पहले प्रकार के लोगों को समझाना बहुत कठिन किन्तु परिणाम स्थायी होता है। दूसरे प्रकार के लोगों को संबंधों के आधार पर तैयार करना होता है जो सामान्य परिणाम देता है। तीसरे प्रकार के लोग गली गली में आसानी से मिल सकते हैं किन्तु परिणाम शून्य देते हैं। मुझे ऐसा महसूस होता है कि आपसे ऐसे ही लोगों से अधिक भेंट हुई। जो लोग न तो खर्च कर सकते हैं न ही समय दे सकते है। जो लोग इस योजना को आवश्यक मानते हैं वे या तो चंदा करके यह काम पूरा कर सकते है या सिर्फ अपने ब्लाक तक। और यदि उतना भी नहीं कर सकते तो अपने शहर के दस सदस्यो का फार्म भरवाकर भेज सकते हैं। इस काम में तो कोई खर्च या अधिक समय नहीं लगेगा। जो लोग सोचते हैं कि केन्द्र को यह खर्च उठाना चाहिये उन्हें यह भी सोचना चाहिये कि अब तक केन्द्र को धन कहीं से प्राप्त नहीं हुआ है। केन्द्रीय कार्यालय सत्ता परिवर्तन के किसी खेल के उद्दश्य से यह योजना नहीं चला रहा ह। हम तो सिर्फ इतना ही चाहते है कि देश में शक्ति का समाज से निकल कर राजनीति के पास केन्द्रित होने तथा राजनीति के चरित्र में हो रही निरतर गिरावट से चिन्तित लोग मिल जुलकर हमारे बताये मार्ग से समाधान का प्रयत्न करें। प्रथम चरण के रूप में हम पूरे भारत के एक करोड़ नागरिकों के इस आशय के समर्थन पत्र चाहते हैं कि शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होने के पक्ष में जनमत जागरण से वे सहमत हैं। आप दस ऐसे लोगों के नाम पते फार्म में भरवा सकें जो ऐसे ही दस अन्य के फार्म भरवा ले तो पहला चरण आगे बढ़ जावेगा। इसमें कोई ज्यादा समय या व्यय नहीं है। यदि आप अधिक सक्रिय होना चाहते हैं तो आपको या तो अपना या चन्दा करके खर्च करना पड़ेगा। इस खर्च की मात्रा आपकी क्षमता और लगन पर निर्भर है। क्षमता और स्वेच्छा से अधिक आप किसी पर बोझ डालें ऐसी हमारी योजना नहों है।

पश्नोत्तर

श्री रामअवधेश मिश्र, वाराणसी, उत्तर प्रदेश ।

प्रश्न— आप पूरे देश में जो विचार दे रहे हैं वह बिल्कुल नया किन्तु तर्क संगत है। क्या आप कोई नया राजनैतिक दल बनाने की योजना रखते हैं? यदि हॉ तो उसका स्वरूप क्या होगा और यदि नही तो आप भारत के वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य को कैसे बदल सकेंगे?

उत्तर — मैंने कई मुद्दों पर अपने विचार दिये हैं। जैसे –

1. भारत में महंगाई एक भ्रम है। रूपये के मूल्य ह्रास को नासमझी के कारण महंगाई मान लिया जाता है।

2. मुद्रा स्फीति का धनहीनों या गरीबो पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. भारत में अनाज, कपड़ा, दवा, वनोपज, साइकिल आदि सभी आवश्यक वस्तुओं को कर मुक्त करके डीजल, बिजली, पेट्रोल आदि की भारी मूल्य वृद्धि कर देने से आथिक असमानता नियंत्रित हो सकती है।

4. महिला उत्पीड़न का पचार लगभग असत्य तथा भ्रामक हैं। समाज में तो महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा सम्मान प्राप्त है। परिवार में महिलाओं के साथ भेदभाव थोड़ा सा संवैधानिक संशोधन करके ठीक किया जा सकता है। ऐसी अनेक तथ्य हम लोगों ने अनुसंधान के माध्यम से खोज निकाले जो आज भी समाज में असत्य होते हुए भी सत्य के समान सहज स्वीकृत है।

हम लोगों ने इस धारणा पर भी बहुत गंभीर विचार मंथन किया कि सामाजिक चरित्र पतन ने राजनैतिक विचार धारा को प्रदूषित किया या राजनैतिक विचार धारा ने समाज का चरित्र पतन किया। आम तौर पर यह माना जाता है कि सामाजिक चरित्र पतन का प्रभाव राजनीति पर पड़ रहा है किन्तु हमारे अनुसंधान में यह बात पूरी तरह असत्य पाई गई है। सच्चाई यह है कि राजनीति की कुछ भूलों ने राजनीतिक नीतियों ओर चरित्र को प्रभावित किया और उसका प्रभाव समाज पर पड़ा। हमने यह निष्कर्ष निकाला कि समाज का राजनीति पर कोई पभाव नहीं है बल्कि राजनीति का समाज पर प्रभाव हैं। इस तरह हमने यह नया तथ्य निकाला है कि समाज परिवर्तन के सभी प्रयास तब तक निष्फल हैं जब तक राजनैतिक प्रदूषण स समाज की सुरक्षा के उपाय न हों। राजनैतिक प्रदूषण से मुक्ति के उपायों पर भी विचार हुआ और कारणों पर भी। वर्तमान समय में राजनीति शासक और समाज शासित की भूमिका में है। शासन पर समाज का कोई अंकुश नहीं है। वर्तमान स्थिति में समाज, संविधान, शासन और व्यक्ति का निम्न स्वरूप है –

संसद नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित संसद
संसद नियंत्रित कानून, कानून नियंत्रित व्यक्ति

इस स्वरूप को अब ऐसा परिवर्तित होना चाहिये –
समाज नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित संसद
संसद नियंत्रित कानून, कानून नियंत्रित व्यक्ति

इस तरह हम लोगों ने संसद नियंत्रित संविधान की व्यवस्था को समाप्त करके संसद को संविधान के प्रति पूरी तरह उत्तरदायी बना दिया है। इस एक मौलिक परिवर्तन से सम्पूर्ण व्यवस्था बदल जायेगी।

‘ शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम हों यह बात स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के दसवें नियम में, गांधी जी ने अपने सम्पूण विचार धारा में, विनोबा जी ने एक दो स्थानों पर तथा जय प्रकाश जी ने कई स्थानों पर कही है भले ही सबकी भाषा कुछ भिन्न भिन्न हो। जय प्रकाश जी इस विचार धारा को ज्यादा स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके थे जब उन्होंने साफ साफ कहा कि शासन का स्वरूप संसदीय प्रणाली के स्थान पर सहभागी लोकतंत्र का तथा केन्द्र शासन क पास पांच छः विभाग ही हों। शासन उल्टा पिरामिड का स्वरूप न होकर सीधा पिरामिड स्वरूप का हो। न आर्य समाज ने स्वामी जी के इस संकेत को ठीक ठीक समझा और न ही गांधी वादियों ने गांधी विनोबा जयप्रकाश क कथन को। सब लोग शासन द्वारा प्रचारित इस असत्य पर ही विश्वास करने लगे कि समाज की छाया शासन पर पड़ती है। अतः समाज जैसा होगा वैसी ही सरकार होगी। यह असत्य समाज में इस सीमा तक घुसपैठ कर चुका है कि अच्छे अच्छे आर्य सन्यासी भी स्वामी दयानन्द द्वारा राजा को दी गई फटकार की आवश्यकता को भूलकर सिर्फ चरित्र निर्माण की बात करते है और गांधी जी विनोबा जी जयप्रकाश जी के लोगों के विषय मे तो कुछ चर्चा करना ही व्यर्थ है। मैं या मेरे साथी इस संबंध में जो कुछ कह रहे हैं वह बिल्कुल भी नया विचार नहीं हैं वह तो पुराने महापुरूषों के तथा जयप्रकाश जी के नवीनतम निष्कर्षो पर ही पूरी तरह आधारित है। इसमें यदि कुछ नया है तो सिर्फ यही कि उन विचारों को नये नये मजबूत तर्को से समाज बाह्म स्वरूप दिया गया है तथा इस विचार को प्राथमिक आवश्यकता मानकर एक सूत्रीय जनमत जागरण का रूप दिया जा रहा है। इस दिशा में सोचकर कुछ निष्कर्ष निकालने वाला मैं अकेला व्यक्ति नहीं हूँ। माननीय ठाकुरदास जी बंग सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र, श्री एम.एच. पाटिल, धारवाड़, कर्नाटक, श्री मदनमोहन व्यास, अजन्ता रोड़, रतलाम, मध्यप्रदेश भी ऐसे ही नतीजे निकालकर अपने अपने तरीके से इस दिशा में काम कर रहे हैं। हम चारो पृथक पृथक रूप से नतीजे निकालकर पृथक पृथक रूप से काम में लगे होने के बाद भी एक दूसरे के सम्पर्क में भी हैं और सहयागी भी। हम चारो के तर्क भिन्न भिन्न हो सकते हैं किन्तु चारों का समस्या का कारण और समाधान का मार्ग बिल्कुल ही एक है। इस तरह मेरे विचार में चारो ही प्रयास एक दूसरे के पूरक हैं।

राजनैतिक दल सुशासन के उद्दश्य से ही बनाये जाते हैं। राजनैतिक दल अपना यह उद्दश्य कभी छिपाते भी नहीं हैं। प्रत्येक राजनैतिक दल सुराज्य और विकास के नाम पर वोट भी मांगता है और काम भी करता ह। हमें न सुराज्य से मतलब है न विकास से। हम तो यह मानते हैं कि सुराज्य और विकास स्वराज्य के बाद ही आ सकता है, न भविष्य में होगी।

भारतीय राजनीति गंदी हो गई है यह तो सच है किन्तु राजनीति का शुद्धीकरण तब तक असंभव है जब तक राजनेताओं के अधिकारों में कटौती न हो। यह कार्य दो प्रकार से हो सकता है :–

1. संसद संविधान में ऐसा संशोधन करे **2.** भीड़ वर्तमान संविधान के स्थान पर नया संविधान स्थापित कर दे। पहला कार्य असंभव दिखता है और दूसरा अनुचित। हमें पहले कार्य की दिशा पकड़नी चाहिये। इसके दो मार्ग हो सकते है। **1.** वर्तमान संसद इस दिशा में पहल करें **2.** अगले चुनाव में ऐसी संसद बनाकर संविधान में तीन चार संशोधन कर दिये जावे। हम अभी वर्तमान संसद को यह बात बताने के लिये जनमत जागृत करने में लगे है। यदि यह नहीं हुआ तो तीन वर्ष बाद दूसरे माग पर विचार किया जा सकता है। ऐसे प्रयास को राजनैतिक दल की भी संज्ञा दी जा सकती है जिससे हमें परहेज नहीं है। अभी तो हम सिर्फ जनमत जागरण तक सीमित हैं।